**ओ३म्**

**‘मनुष्य जीवन, स्वास्थ्य रक्षा और चिकित्सा’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

मनुष्य योनि सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है। कहा गया है कि **‘सुर दुर्लभ मानुष तन पावा’** अर्थात् देवताओं को भी दुर्लभ है यह मनुष्य शरीर ईश्वर की अहैतुकी कृपा से हम मनुष्यों को प्राप्त हुआ है। प्रायः भद्र पुरुषों का ऐसा नियम है कि जो भी वस्तु हमें उपहार में मिले उसे बहुत सम्भाल कर रखनी चाहिये। यह मानव जीवन एक प्रकार से ईश्वर द्वारा हमें प्रदान किया गया उपहार ही है। वैदिक कर्म-फल व्यवस्था के अनुसार हमने पूर्वजन्म व उससे भी पहले हुए जन्मों में जो शुभ व अशुभ कर्म किये थे, उसके परिणामस्वरुप हमें परमात्मा से यह मानव शरीर मिला है। हमारे जैसे शुभ व अशुभ कर्म होते हैं उससे हमारा प्रारब्ध बनता है। उस प्रारब्ध से हमें जाति, आयु और भोगों की प्राप्ति होती है। यह हमारा वर्तमान जीवन अर्थात् मानव योनि में जन्म को ही जाति कहते हैं। हमें जो मानव जीवन मिला है उसमें हमारे प्रारब्ध के अनुसार हमें भोग प्राप्त होते हैं। इसमें ईश्वर मानव शरीर प्राप्त कराने के निमित्त हमारे प्रारब्ध में से कुछ कटौती नहीं करते। अतः यह मानव शरीर एक प्रकार से ईश्वर की जीवों पर दया, करूणा व कृपा का ही परिणाम सिद्ध होता है।

 मानव शरीर का आरम्भ जीव के माता के गर्भ में आने से होता है। 10 मास तक शरीर बनता है और फिर यह शिशु के रूप में माता के गर्भ से बाह्य संसार में आता है। नवजात शिशु जन्म से कुछ वर्षों के काल तक अपनी देखभाल, पालन व रक्षा स्वयं करने में असमर्थ होता है। मुख्यतः माता-पिता ही इसका पालन-पोषण व रक्षा करते हैं। परमात्मा के नियम के अनुसार यह माता के दुग्ध का सेवन करता है जिससे इसके शरीर में हर क्षण अथवा दिन प्रतिदिन उन्नति व वृद्धि होती जाती है। जन्म के समय न तो मुंह में दांत होते हैं और न ही सिर पर बाल। आँखें व अन्य बाह्य इन्द्रियां भी बहुत छोटी व निर्बल होती हैं। माता के दुग्ध व पालन पोषण से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ यह शिशु बालक किशोर हो जाता है और तब इसमें अपने दैनन्दिन व्यवहार करने की कुछ क्षमता उत्पन्न होती है। यह विद्या प्राप्ती के लिए आचार्यकुल में जाता है। वहां विद्या का अभ्यास करते हुए ईश्वरोपासना व यज्ञादि कार्यों को भी करता है। आहार व भोजन के रूप में दुग्ध, फल, अन्न व पके हुए भोजन को ग्रहण करता है जिससे इसके शरीर वा काया के परिमाण में वृद्धि होती है। **स्वस्थ मनुष्य उसे कह सकते हैं जिसको कोई रोग न हो, जो बल व शक्ति में अपनी आयु के अनुसार पूरी क्षमता से बौद्धिक व शारीरिक श्रम कर सके तथा उसे किसी प्रकार की शारीरिक पीड़ा आदि न हो।** यदि ऋतु परिवर्तन व आहार-विहार में किसी प्रकार की असावधानी व त्रुटि हो जाती है तो उसके परिणाम से नाना प्रकार की व्याधियां शरीर में आ जाती हैं जिनके लक्षणों से रोग के मूल स्वरूप को जानकर आयुर्वेद की शिक्षा के अनुसार उसका निदान करना होता है। यह रोग मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त कभी भी आ सकते हैं। पहली सावधानी तो माता-पिता व स्वयं किशोर अवस्था के व्यक्ति को यह करनी होती है कि वह अपने स्वास्थ्य के नियमों का उचित रीति से पूर्णरूपेण पालन करें। इसमें किंचित शिथिलता न आने दे। इस पर भी यदि भोज्य पदार्थों में किसी प्रकार की अशुद्धि व ऋतु परिवर्तन आदि के कारण कोई विकार आकर रोग का रूप ले ही लें तो उसकी समुचित चिकित्सा करनी होती है। इस चिकित्सा में वैद्य व डाक्टर प्रायः कुछ औषधियों के सेवन व विश्राम की सलाह देते हैं जिससे रोग दूर हो जाता है और मनुष्य पुनः पूर्व की ही भांति अपनी पूरी क्षमता से कार्य करने के योग्य हो जाता है।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य शरीर को साधना में लगाकर ईश्वर को जानना व उसे प्राप्त करना है। पहली साधना तो सद्विद्या की प्राप्ति है। आजकल की शिक्षा पद्धति की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि इसमें विद्यार्थी को उसके अपने स्वरूप अर्थात् जीवात्मा तथा ईश्वर के यथार्थ स्वरूप के बारे में नहीं बताया जाता। क्या यह विषय उपेक्षणीय है? यदि नहीं है, तो फिर इसका अध्ययन व अध्यापन अवश्य होना चाहिये। इसका पाठ्यक्रम क्या हो? इस पर विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि हमारे आधुनिक वैज्ञानिक तो ईश्वर व जीवात्मा के स्वरूप के बारे में जानते ही नहीं हैं। इसके बाद स्थान आता है हमारे मत-मतान्तरों वा धर्म का। मत मतान्तरों में हिन्दुओं के अनेक सम्प्रदाय, बौद्ध, जैन मत, ईसाई व ईस्लाम मत आदि आते हैं। हिन्दुओं की जीवात्मा व ईश्वर के स्वरूप के ज्ञान के विषय में क्या स्थिति है? इस विषय में व्यापक रूप से विचार करने पर ज्ञात होता है हिन्दू मत में जीवात्मा के विषय में कुछ सत्य व कुछ मिथ्या विश्वासों का मिश्रण है। इसी प्रकार से ईश्वर के विषय में भी अनेक सत्य व असत्य विश्वास हिन्दू मत में पाये जाते हैं। इन दोनों सत्ताओं के विषय में कोई एक निश्चित, तर्क व युक्ति पूर्ण, मान्यता नहीं है। हिन्दू जीवात्मा को अनुत्पन्न, अनादि, अजर, अमर, सूक्ष्म व एकदेशी मानते हैं। पुनर्जन्म भी मानते हैं फिर भी मरने के बाद मृतक पितरों के पुत्र व उनके वंशज मृतक जीवात्मा का श्राद्ध आदि करते हैं जो तर्क व युक्ति से सिद्ध नहीं होता। ईश्वर को सच्चिदानन्द, सर्वज्ञ, अनादि, अनुत्पन्न, अजन्मा, अमर, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वदेशी, सर्वान्तर्यायी माना जाता है और साथ ही उसका अवतार मान कर मिथ्या मूर्तिपूजा भी की जाती है। इसी प्रकार अन्य मत भी सत्य व असत्य मान्तयाओं, विचारों व विसंगतियों से युक्त हैं। केवल एक वैदिक मत, जिसका प्रचार व प्रसार आर्य समाज करता है, वह जीवात्मा व ईश्वर के बारे में एक निश्चित मान्यता व सिद्धान्त को मानता है जो तर्क, युक्ति व वेद के प्रमाणों से सत्य सिद्ध है। हमें लगता है कि भारत में धर्मनिरपेक्षता के अव्यवहारिक सिद्धान्त के कारण ही वेदों की सत्य मान्यताओं को जो कि विद्या के मूलभूत सिद्धान्त हैं, की पाठ्यक्रम में उपेक्षा की जाती है जिसके परिणामस्वरुप समाज में धन सम्पत्ति व भोग के प्रति लोगों का मोह बढ़ रहा है और फलतः आर्थिक, दैहिक शोषण व अन्याय आदि अपराध बढ़ रहे हैं।

शिक्षा में न केवल जीवात्मा व परमात्मा के स्वरूप व उनके गुण, कर्म व स्वभाव की शिक्षा आवश्यक है अपितु जीवन का उद्देश्य, अपने व ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को जानकर ईश्वर की उपासना करना, यज्ञ अग्निहोत्र करना, माता-पिता-आचार्यों की सेवा करना, अतिथियों का सेवा सत्कार तथा अन्य प्राणियों पर दया की भावना रखते हुए उनके कल्याण व सुख के लिए कार्य करना और उनके प्रति किसी प्रकार से हिंसा न करना कर्तव्य सिद्ध होते हैं। अतः शिक्षा के पाठ्यक्रम में इन सभी विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिये। यही मनुष्य व वैदिक धर्म कहलाता है। इन सभी वैदिक मूल्यों का पालन स्वास्थ्य से भी जुड़ा है। स्वास्थ्य का सम्बन्ध हमारे मानसिक चिन्तन व स्वभाव से भी है। यदि मानसिक चिन्तन परोपकार व यज्ञीय भावनाओं से युक्त होगा तो रोग प्रायः नहीं होंगे व अति अल्प होंगे। यज्ञ करने से भी रोग नहीं होते और यदि कभी हों तो वह स्वतः ठीक हो जाते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वैदिक विचारधारा जिसका प्रचार महर्षि दयानन्द व उनके बाद आर्यसमाज करता आ रहा है, सभी मनुष्यों के लिए उपयुक्त व श्रेयस्कर है।

स्वस्थ रहना अभ्युदय व निःश्रेयस वा धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के लिए अनिवार्य है। स्वस्थ रहने के लिए व्यायाम व आसनों का अपना महत्व है। इसे प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को प्रातः व सायं भोजन से पर्याप्त समय पूर्व अवश्य करना चाहिये। प्रातःकाल भ्रमण कर शुद्ध वायु का सेवन करना चाहिये। नियत समय पर सन्ध्योपासना द्वारा ईश्वर का ध्यान, अग्निहोत्र यज्ञ व अन्य दैनिक कर्तव्यों का पालन करना चाहिये। यह सब स्वस्थ जीवन का आधार हैं और युक्ति व अनेक उदाहरणों से भी सत्य सिद्ध होते हैं। स्वस्थ रहने के लिए भोजन पर विशेष ध्यान देना चाहिये। इसका नियम यह है कि भूख से कुछ कम शुद्ध शाकाहारी स्वास्थ्यकर व पुष्टिवर्धक भोजन ही किया जाये। भोजन प्राप्त करने के लिए धर्म का पालन करते हुए उचित व धर्मसम्मत आजीविका द्वारा ही धनोपार्जन करना चाहिये। पापपूर्वक कमाये गये धन से मन व मस्तिष्क अशुद्ध व विकृत होता है और इसका स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। अतः पुण्य कमाई से प्राप्त अन्न का ही सेवन करना चाहिये। इस पर भी यदि कभी रोग हो जाये तो सबसे पहले आयुर्वेद के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। यदि लाभ न हो तो फिर होम्योपैथी व एलोपैथिक चिकित्सा पर विचार करना चाहिये। एलोपैथी में आजकल जो रक्त, मल, मूत्र, एक्स-रे, अल्ट्रा साउण्ड, मधुमेह, ईसीजी, ईको, सीटी स्कैन, एमआरआई, एंडोस्कोपी आदि परीक्षण किये जाते हैं उनसे रोग का ठीक ठीक अनुमान लग जाता है और उपचार कराना सरल हो जाता है। आजकल असाध्य रोगों में रक्तचाप, मधुमेह, हृदयरोग, कैंसर आदि का नाम सुनते हैं। इनका ज्ञान इनसे सम्बन्धित परीक्षण कराकर हो जाता है कि यह रोग शरीर में हैं वा नहीं। अतः किसी व्यक्ति का कोई रोग यदि शीघ्र ठीक न हो तो रोग के लक्षणों के अनुसार आवश्यक परीक्षण करा लेने चाहियें और जिस पद्धति की चिकित्सा सुगम व शुभ परिणामकारी हो, उसे ही प्रयोग में लाना चाहिये।

कोई भी मनुष्य रोगी होना व औषध सेवन करना नहीं चाहता परन्तु असंयमित जीवन, भोजन में असावधानी, वायु प्रदुषण, खाद्य पदार्थों में विषयुक्त रासायनिक खाद के प्रयोग व प्रभाव एवं कुछ अज्ञात कारणों से वह रोगी हो जाता है और उसे चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। यदि समय पर रोग के किसी लक्षण का पता चलने पर उसकी जांच कर सही रोग का पता लग जाये तो चिकित्सा से वह ठीक हो जाता है। रोग के प्रारम्भिक लक्षणों को भविष्य में होने वाले भयावह रोगों की एक प्रकार से चेतावनी की तरह लेना चाहिये। रोग ठीक हो जाये और भविष्य में वह व अन्य रोग न हों, उसके लिए अपनी जीवन शैली सुधारने के साथ संयमित जीवन व्यतीत करना चाहिए और भोजन को नियमित अर्थात् शरीर की प्रकृति के अनुरूप कर रोगों से बचा जा सकता है। **यज्ञ भी मनुष्य को स्वस्थ रखने के साथ रोगों को दूर भगाता है, अतः उसे भी नियमित रूप से करना चाहिये। योग स्वस्थ रहने के लिए बिना व्यय की एक सबसे महत्पूर्ण व कारगर चिकित्सा है।** आज पूरे संसार में स्वास्थ्य व योग के प्रति जागृति उत्पन्न हुई है जो कि प्रशंसनीय है। संक्षेप में स्वस्थ रहने के लिए प्रातः 4 बजे निद्रा त्याग, प्रातः वायुसेवन हेतु भ्रमण, स्नान द्वारा शारीरिक शुद्धि, ईश्वरोपासना, ऋतु के अनुसार हितकारी, मिताहार तथा सद्ग्रन्थों सहित आयुर्वेद के ग्रन्थों का अध्ययन भी मनुष्य को स्वस्थ व सुखी बनाता है, अतः इसे अपनाना चाहिये। हम आशा करते हैं कि इस लेख की बातों से पाठकों को लाभ होगा और वह इससे अभ्युदय व निःश्रेयस की प्राप्ति में अग्रसर होकर सुखी व सन्तुष्ट जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**